पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र

(२६)

कलकत्ता
१६-१२-१९६१

ॐ
श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी... धर्मस्नेह।

लगभग बीस दिवस से रागांश में विशेष खेद-खिन्नता वर्त रही है, ऐसे समय आपका पत्र मिलने से प्रसन्नता हुई। वहाँ से आये पश्चात् १-१।। माह तक सोनगढ़ की विशेष खुमारी रही, अभी तो उसका शतांश भी नहीं है।

व्यावसायिकस्थिति में कई प्रकार के परिवर्तन हो जानेसे, अब चलें, अब चलें, सोचते हुए भी वहाँ आनेका प्रोग्राम नहीं बन सका। गुरुदेवश्री की आँख के ओपरेशन के ता.२४ बाबत के समाचार सुवर्णसंदेश में भी पढ़े थे। परंतु पुण्ययोग के अभाव में उनके साक्षात् दर्शन व वाणी का लाभ कैसे मिले? व्यवहार से व खास तौरसे अशुभयोग से पूर्ण निवृत्ति चाहते हुए भी, गृहस्थ आदि व्यावसायिक जञ्जालों का ऐसा उदय है कि मन नहीं लगे वहाँ लगाना पड़ रहा है, बोलना नहीं चाहते उनसे बोलना पड़ता है, ऐसी योग्यता है।

हे गुरुदेव! लोकोत्तर लाभ हेतु आपके वचनों पर श्रद्धा की है, आशीर्वाद देता हुआ आपका मोहक चित्र देखा है। आपके आशीर्वाद से पूर्ण आनंदमयी निधि को प्राप्त हो जाऊँ और अनंत पदार्थोंके तीनकाल के अनंते भाव वर्तमान एक-एक भाव से अविच्छिन्न प्रत्यक्ष होते रहें-ऐसी तीव्र अभिलाषा है। दरिद्री को चक्रवर्तीपने की कल्पना नहीं होती। पामरदशावाले को 'भगवान हूँ... भगवान हूँ' की रटन लगाना, हे प्रभो! आप जैसे असाधारण निमित्त का ही कार्य है। परिणति को आत्मा ही निमित्त होवे अथवा भगवान... भगवान की गुंजार करते आप; अन्य संग नहीं; यह ही भावना।

मेरा यहाँ रहने का अथवा बाहर जानेका प्रोग्राम तो सदैव की तरह अनिश्चित-सा ही समझो।

अशुभयोग में काटाला हुआ
- चेतन

करुणासागर पूज्य भाईश्री 'शशीभाई' की ८६वीं जन्म-जयंती

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री शशीभाई का आगामी ८६वी जन्म जयंती महोत्सव मार्गशीर्ष सुदी-४, दि. ११-१२-१८ से मार्गशीर्ष सुदी-८, दि. १५-१२-१८ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा।

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४५ः अंक-२५१, वर्ष-२३, अक्टुबर-२०१८

आषाढ़ शुक्ल ९, सोमवार, दि. २७-६-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-५७, प्रवचन-१९

५६। '**आत्मानुभवी ही संसार से मुक्त होता है।**'

जे णवि-मण्णहिं जीव फुडु जे णवि जीउ मुणंति।
ते जिण-णाहहँ उत्तिया णउ संसार मुचंति।।५६।।

जो भगवान आत्मा... '**जो स्पष्टरूप से आत्मा को नहीं जानता...**' स्पष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष। समझ में आया? '**णवि-मण्णहिं जीव फुडु**' आत्मा विकल्परहित, मन के संगरहित सीधे आत्मा अपने को ज्ञात हो... ऐसे आत्मा को प्रत्यक्षरूप से कोई नहीं जानता। समझ में आया? '**और जो अपने आत्मा को अनुभव नहीं करता...**' जानना और अनुभव करना, दोनों साथ लिये हैं। प्रत्यक्ष नहीं जानता... दो शब्द अलग किये हैं न? एक तो प्रत्यक्ष नहीं जानता; उसमें वजन यह दिया कि राग और मन रहित आत्मा को सीधे जानने का नाम आत्मा का जानना कहलाता है। समझ में आया? ऐसे दो बोल (कहे हैं)।

'**जे णवि-मण्णहिं जीव फुडु जे णवि जीउ मुणंति**' भगवान आत्मा...! यहाँ तो अकेले आत्मा के ही गीत हैं। योगसार! भगवान पूर्णानंद प्रभु के अन्दर में एकाकार हो, वही योगसार है; बाकी कुछ सार-फार नहीं। क्या कहते हैं? जो कोई जीव अपने आत्मा को '**स्पष्टरूप से अपने आत्मा को नहीं जानता...**' एक बात। परोक्ष से जानना कि यह आत्मा है, यह आत्मा (है) वह आत्मा नहीं। प्रत्येक गाथा में भाव बदलते हैं, हाँ! बात तो ऐसी की ऐसी लगती है परन्तु बदलते हैं। भगवान आत्मा '**स्वानुभूत्या चकासते**'। एक ज्ञान की लहर से जागता भगवान स्वयं अपने को प्रत्यक्ष न जाने, उसे कहते हैं कि, उसे हम ज्ञान नहीं कहते। आहाहा..! ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु :- एक विकल्प से जाने और...

उत्तर :- विकल्प से जाने, वह ज्ञान ही नहीं, वह ज्ञान ही नहीं है। प्रत्यक्ष जाने, उसे ज्ञान कहते हैं-यहाँ ऐसा सिद्ध करना है। विकल्प से जानना, वह जानना नहीं है। भाई! सब बात ऐसी है।

मुमुक्षु :- व्यवहार से जाना कहलाता है?

उत्तर :- नहीं, एक ही प्रकार। व्यवहार से जाना, वह जानना है ही नहीं। ज्ञान का सीधा ज्ञान हुए बिना जानना, वह ज्ञान है ही नहीं। आहाहा..! समझ में आया?

मुमुक्षु :- सीधा अर्थात् ऐसा...

उत्तर :- सीधा अर्थात् राग बिना, अन्दर प्रत्यक्ष ज्ञान। शास्त्र का ज्ञान और उसका उत्पन्न हुआ विकल्प, उससे आत्मा (जाना)-ऐसा नहीं है। '**फुडु**' शब्द इसलिए प्रयोग किया है।

भाई! यह तो मूलमार्ग है। भगवान आत्मा को अन्दर ज्ञान से ज्ञान का प्रत्यक्ष स्वसंवेदन होना उसे

ज्ञान कहते हैं-ऐसा यहाँ कहते हैं। भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब प्रभु का ज्ञान से ज्ञान होना, सीधा स्वसंवेदन होना, उसे आत्मा का ज्ञान कहा जाता है।

मुमुक्षु :- सीधा कहा अर्थात् टेढ़ा नहीं।

उत्तर :- टेढ़ा (अर्थात्) इस राग से किया और विकल्प से किया, शास्त्र से किया, वह कहीं ज्ञान नहीं है, वह टेढ़ा कहलाता है। आहाहा..! यहाँ तो निराला प्रभु, अत्यन्त निराला है न? आहाहा..! वस्तु तो वस्तु परमात्मस्वरूप ही स्वयं है। कल तो आया नहीं था? परमात्मस्वरूप में स्थित आत्मा है। स्थित है। परमात्मस्वरूप में स्थित है, वह राग में पुण्य में अल्पज्ञानमें भी नहीं। आहाहा..! ओहो..! सन्तों की कथनी (ने) मार्ग को सरल करके ऐसा जगत को समझाया है! भाई! तू तो तेरी हथेली में-हाथ में ऐसा है न! पूर्ण सत्ता। कहा नहीं था? '**सततम् सुलभं**' आया था या नहीं? भगवान! तू तुझे सुलभ न हो तो तुझे कौन सी चीज सुलभ होगी? आहाहा..!

भाई! ज्ञानानन्द की ज्योत है न! अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रगट... प्रगट... प्रगट... प्रगट है न! अस्तिरूप से प्रगट है, उसे नास्तिरूप कैसे कहना? आहाहा..! इस सब व्यवहार से मुक्त भगवान आत्मा है। आहाहा..! देखो, तो सही! यह आ गया है। सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है-ऐसा इसमें आ गया है। समझ में आया? हो भले.. जैसे परद्रव्य से, ऐसे हो भले-दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा (का) भाव-शुभभाव होता है परन्तु सम्यक् आत्मा ज्ञायकमूर्ति का जिसने सीधा ज्ञान करके जाना, वह धर्मी तो व्यवहार से मुक्त है। आहाहा..! व्यवहार से लाभ तो नहीं परन्तु व्यवहार से मुक्त है। व्यवहार भेद, विकल्प, राग है।

भगवान आत्मा अभेद चैतन्य के अनुभव में, उसकी अभेददृष्टि में धर्मी व्यवहार से मुक्त है। समझ में आया? व्यवहार करना पड़े और होना चाहिए-ऐसा नहीं, यह कहते हैं। हो, परन्तु करना पड़े और होवे तो ठीक-ऐसा सम्यग्दृष्टि के आत्मा के ज्ञान में नहीं है। उसके बाद यह बात लेंगे। अन्य व्यवहार कहा न? समझ में आया? अन्य सर्व व्यवहार... कहाँ तक ले गये, देखो न! वस्तु जैसे सर्व से अन्य-ऐसी अभेददृष्टि जहाँ हुई, उसमें वह सर्व व्यवहार से भिन्न है। समझ में आया? यह व्यवहार का पूंछड़ा निश्चय को लागू नहीं पड़ता-ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा..! समझ में आया? आहाहा..! यह प्रभु अकेला ज्ञान का सूर्य प्रभु भिन्न है। कहते हैं कि उसे जानना, तब कहते हैं कि जिसका (स्वरूप) अपने को प्रत्यक्ष हो। जिसे पर की सहायता, मन, वाणी, राग या पर का श्रवण करना, उससे आत्मा ज्ञात होता है? (कहते हैं) नहीं। गुरु की वाणी में बोध रहा है आत्मा? बोध तो बोध में रहा है; भगवान, आत्मा में रहा है। ऐई..!

मुमुक्षु :- तब तो जवाबदारी रह जाती है।

उत्तर :- ऐसा इन्होंने कहीं डाला है। ऐसा वह कहीं आया था। नहीं? ५३ तो आज चला, उसके पहले कहीं था, हाँ! इन्होंने डाला है। गुरु के बोध में ज्ञान नहीं-ऐसा कहते हैं, यह तो आ गया है, यह कहीं आया था। नहीं आया गुरु? निषेधकर्ता, ऐसा स्वयं ने कहीं लिखा था। ५६ चलती हैं न? कहीं है अवश्य, इन्होंने एक जगह डाला था। (रेत

में) तेल में जल नहीं परन्तु सरोवर में है; उसी प्रकार गुरुवचन में बोध नहीं परन्तु हृदय सरोवरमें है-यह ५२ गाथा में है। ५२ गाथा है सही न? '**सत्थ पढं जड़ अप्पा**' यह भाई, नहीं? 'लालन' यह पहले ५३ बोल पढ़ा न? यहाँ ५२ है, उसमें जरा अन्तर है। '**सत्थ पढं तह ते वि जड़ अप्पा जेण मुणंति।**' ऐसा लिखा है, देखो! गुरु वचन में बोध नहीं परन्तु हृदय सरोवर में है। बोध यहाँ है, कहते हैं। मैंने कहा, कहीं पढ़ा था। कहो, समझ में आया? यह चन्द्रमा जगे, वहाँ आत्मसमुद्र अन्दर से उछलता है-ऐसा कहते हैं।

कहते हैं कि जिसने आत्मा को प्रत्यक्ष जाना, उसने आत्मा को जाना कहलाता है। समझ में आया? '**जे णवि-मण्णहिं जीव फुडु**' वह संसार से नहीं छूटता-ऐसा जिननाथ कहते हैं। क्या कहते हैं? '**जिण णाहहं उत्तिया**' है न? जिननाथ... '**ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।**' भगवान त्रिलोकनाथ परमह्मवीतरागदेव ऐसा फरमाते हैं-जिसने आत्मा को प्रत्यक्ष नहीं जाना, वह संसार से नहीं छूटेगा। समझ में आया? आहाहा..! इस प्रकार ज्ञान से ज्ञान जो जानकर वेदन करे.. राग नहीं, मन नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, गुरु नहीं, कोई नहीं। उसने शास्त्र के धारे हुए धारणा किये भावना के बोल, वे भी नहीं। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा '**फुडु**' अर्थात् स्पष्ट स्वयं, स्वयं से नहीं जाने, स्वयं अपने से प्रत्यक्ष नहीं जाने... '**जिण-णाहहँ उत्तिया णउ संसार मुचंति**' जिनेन्द्रदेव कहते हैं कि वह संसार मिथ्यात्वादि से छूटेगा नहीं। संसार शब्द से मिथ्यात्व, हाँ! उस मिथ्यात्व से नहीं छूटेगा। आहाहा..! ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं। है या नहीं? ए..भाई! आहाहा..!

भगवान आत्मा! देखो तो सही, योगसार! योगसार अर्थात् प्रभु आत्मा निर्विकल्पस्वरूप से, निर्विकल्प वेदन से अपने को न जाने तो कहते हैं कि, इस विकल्प से जाना और मन से जाना, शास्त्र से जाना वह जीव संसार से मुक्त नहीं होगा। आहाहा..! क्या बात! बात तो ऐसी ही होगी न? समझ में आया? ऐसा '**जिण उत्तिया**' अनन्त जिनेन्द्रों की वाणी में ऐसा आया है। इन्हें लिखना पड़ा- '**जिण उत्तिया**' आचार्य को लिखना पड़ा, भाई! ऐसा तो वीतरागदेव कहते हैं, हाँ! परमेश्वर केवलज्ञानी तीन लोक के नाथ की वाणी में इच्छा बिना ध्वनि आयी, उस ध्वनि में ऐसा आया था कि जो आत्मा को प्रत्यक्ष... चौथे गुणस्थान से, हाँ! आहाहा..! रागरहित भगवान आत्मा को प्रत्यक्ष न जाने, वह संसार-मिथ्यात्वादि से नहीं छूटेगा। समझ में आया? भाई! आहाहा..! संसार शब्द से मिथ्यात्व, वह संसार है, हाँ! मिथ्यात्व गया, संसार नहीं रहता। आहाहा..!

'**जो स्पष्टरूप से अपने आत्मा को नहीं जानता...**' एक बात। '**और जो अपने आत्मा का अनुभव नहीं करता...**' फिर स्थिरता की विशेष बात ली है। प्रत्यक्ष जानकर फिर बारम्बार आत्मा में अनुभव करना; प्रत्यक्ष जानकर फिर स्थिर होना। भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का बारम्बार स्पर्श होना, अतीन्द्रिय आनन्द का स्पर्श होना; प्रत्यक्ष ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का विशेष वेदन, वह जिसे नहीं, वीतराग कहते हैं कि वह संसार से छूटता नहीं है। आहाहा..! कठिन बात भाई!

वे तो ऐसा कहते हैं यह निश्चय... निश्चय... एकान्त... एकान्त (कहते हैं)। सुन न, भगवान! यह तेरा एकान्त स्व प्राप्त करने का यह उपाय है। दूसरा उपाय नहीं है भाई! तुझे लगता है कि यह परोक्ष ज्ञान और यह परज्ञान, बाहर का व्यवहार (इससे) आत्मा के आनन्द के अनुभव के बिना तुझे कल्याण और संवर-निर्जरा हो जाये-ऐसा है नहीं। इसका नाम एकान्त मिथ्यात्व है। समझ में आया? स्वसंवेदनज्ञान बिना संवर-निर्जरा नहीं है और तू ऐसा माने कि इनके बिना, शास्त्र के पठन से संवर-निर्जरा (होते हैं)। यह तेरी एकान्त मान्यता है। अनुभव के बिना निर्जरा की उग्रता नहीं है और तू कहता है कि यह उपवास कुछ करें और यह भगवान के दर्शन

से निर्जरा हो (यह तेरी एकान्त) मिथ्यात्व की मान्यता है-ऐसा कहते हैं। आहाहा..! समझ में आया?

मुमुक्षु :- ऐसा मँहगा, कितना ही खर्च करे तो भी नहीं मिले।

उत्तर :- अन्य तो पच्चीस गुना भाव खर्च करे तो भी मँहगाई में मिलता है, कहते हैं परन्तु यह मँहगाई कैसी? ठीक, निकालते हैं न? यह तो ऐसी सस्ताई है कि किसी की आवश्यकता नहीं पड़ती- ऐसी यह सस्ताई है। आहाहा..! कहो! उसमें तो पैसा चाहिए, लेने जाना पड़े, वह फिर कुछ दे, न दे, उस समय फुर्सत में हो, न हो। इसमें तो किसी की जरूरत नहीं पड़ती। आहाहा..! है? आहाहा..! भगवान आत्मा ऐसा का ऐसा परमात्मस्वरूप विराजमान है, उसका अन्तरध्यान-एकाग्र करना वह तेरे समीप में है, कहीं बाहर से आवे ऐसा नहीं है। आहाहा..! कठिन परन्तु लोगों को... अपनी जाति को जानना, उसमें इसे मँहगा लगता है।

'**श्री जिनेन्द्र भगवान ने दिव्यध्वनि से यही उपदेश दिया है कि अपने आत्मा के श्रद्धान-ज्ञान-ध्यान...**' देखो! '**अर्थात् निश्चयरत्नत्रयस्वरूप स्वात्मानुभव ही ऐसा मसाला है कि जिसके प्रयोग से वीतरागता की अग्नि भड़कती होती है और वह कर्मरूप ईंधन को जला डालती है। आत्मज्ञान के बिना कोई कभी कर्मों से मुक्त नहीं हो सकता।**' परपदार्थ के ध्यान से कहीं मुक्त होते हैं? आहाहा..! '**वास्तव में आत्मानुभव ही मोक्षमार्ग है। सम्यग्दृष्टि बाह्यचारित्र को, वेष को, आचरण को मोक्षमार्ग नहीं जानता...**' कोई-कोई सार-सार लेते हैं, वहाँ कहाँ सब क्या लेना? समझ में आया? भगवान आत्मा.. आहा..! अरे..! इसके गीत भी प्रीति से कभी सुने नहीं। हैं? अध्यात्म की बात... आता है न? '**तत्प्रतिप्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।**' भगवान आत्मा अकेला अनाकुल सहजानन्द सीधा आत्मा अपना स्वामी... स्वयं अपने को प्रत्यक्ष करने की ताकत-शक्तिवाला... उसमें एक गुण ऐसा है। समझ में आया? अनादि एक प्रकाश नाम का गुण है, उसमें अनादि ऐसा गुण है कि जो प्रत्यक्ष होता है-ऐसा ही उसका गुण है। परोक्ष रहे-ऐसा उसमें गुण नहीं है। ऐसा गुण है, उससे मुक्ति होती है या उसके बिना भी मुक्ति होती है? आहाहा..! क्या कहा? ४७ शक्ति में एक बारहवीं शक्ति है, उस शक्ति का स्वभाव, आत्मा में गुण, उसका गुण प्रत्यक्ष होना है। पुण्य-पाप और राग से जानना, वह इसका गुण है नहीं। आहाहा..! इस भगवान आत्मा में ऐसा एक गुण पड़ा है कि जो सीधा प्रत्यक्ष होकर जाने-ऐसा इसमें गुण है। है?

मुमुक्षु :- फिर गाड़ी आगे चले।

उत्तर :- फिर आगे चले। यह सब गले तक यहाँ पड़ गये थे, हाँ! उसके प्रमुख के घर कहलाते हैं न? ..घर। दोनों गाँव के कामदार प्रमुख दोनों गहरे पड़ गये। यह फिर कौन जाने, कहाँ से निकल गये! है? कहो, समझ में आया इसमें? वे कहे अर..र..! यह कानजीस्वामी कहाँ जायेंगे? हमारे आनन्दजी कहते हैं, यह तो मुक्ति में जानेवाले हैं। इतने-इतने मन्दिर बनावे, इतने-इतने पाप करावे, कहाँ जाना होगा? तुम्हारा काका कहे-भाई हमारे हैं न? जवाब देने में होशियार है। पता नहीं तुम्हें कि मोक्ष जानेवाले हैं! सुन न! बाहर का मन्दिर होना और अमुक होना, उसमें आत्मा को क्या? वह तो हुआ, उसमें कहाँ पाप था? वह तो जरा शुभभाव होता है। वह शुभभाव होता है, उसे देखता नहीं और वह पाप हुआ, उसे देखता है। समझ में आया?

मुमुक्षु :- स्थावर की हिंसा होती है, इस अपेक्षा से कहते हैं।

उत्तर :- ... कहाँ था आत्मा में? हिंसा कौन कर सकता है? आहाहा..!

यहाँ तो कहते हैं '**सम्यग्दृष्टि बाह्य चारित्र को, द्वेष को, आचरण को, मोक्षमार्ग नहीं**

(अनुसंधान पृष्ठ सं.१७ पर...)

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रंथके १६६ वचनामृत पर भाववाही प्रवचन, दि.३-२-१९८३, प्रवचन क्रमांक-६५६ (विषय : भेदज्ञान)

जो विकल्प उठते हैं उन्हें धर्मी जानता है पर वह उन विकल्पोंको करता नहीं है। विकल्प सम्बन्धी जो ज्ञान होता है-उसका भी कर्ता विकल्प नहीं। राग होने पर भी, रागके कारण ज्ञानीको राग-सम्बन्धी ज्ञान होता है-ऐसा नहीं है। राग और ज्ञानीके ज्ञानमें ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है, राग उस ज्ञानका कर्ता नहीं है। १६६.

परमागमसार-१६६. कलशटीका कलश-२१३ पर हुए प्रवचनका यह वचनामृत है। २१३ कलश यानी सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार। कलश है न? सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार। क्या कलश है देखते हैं। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकारका है। २०५ के आसपास तो सांख्यका विषय चला है। वैसे तो कर्ता-कर्मका मुख्य विषय है।

सवस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो
येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत् ।
निश्चयोऽयमपरो परस्य कः
किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि।।२१-२१३।।

क्या कहते हैं? जो वस्तु है, वह अपनी स्ववस्तु रूप है और अन्य वस्तुरूप उसका कुछ भी नहीं है। कुछ भी नहीं है। निश्चयसे परस्पर एकदूसरेको कुछ करते नहीं। एकदूसरेके बाहर ही बाहर वे परिणमते हैं, लोटते हैं। लोटते हैं। '**बहिर्लुठन्नपि**'। बाहर लोटते हैं, किन्तु एकदूसरेको कुछ नहीं करते। कर्ता-कर्मका विषय है। अतः ज्ञानकी जो शुद्धता है अर्थात् जो ज्ञानका स्वभाव है-जिसे शुद्ध ज्ञान कहते हैं, वह शुद्ध ज्ञान उसके स्वभावस्वरूप देखा जाय तो मात्र ज्ञानस्वरूपसे और किसीका कुछ नहीं करता। किसीका कुछ नहीं करता और उसे दूसरा कोई कुछ नहीं करता, कोई उसे भी कुछ नहीं करता।

ज्ञानमें ज्ञेय प्रतिबिम्बित हो तब भी ज्ञेय ज्ञानको कुछ नहीं करते। ज्ञानके बाहर वे लोटते हैं, लेकिन ज्ञानको ज्ञेय कुछ नहीं करते। इस तरह शुद्ध ज्ञान मात्र जाननस्वरपसे उसके स्वभावमें रहता है। इस प्रकार शुद्धज्ञानको जानना चाहिये, पहचानना चाहिये और मात्र जाननेके अलाव कुछ नहीं करता, ऐसा उसका स्वरूप है।

अब प्रवचनमें गुरुदेवने विषय लिया है कि धर्मीजीवको '**जो विकल्प उठते हैं उन्हें धर्मी जानता है।**' कहाँ-से बातका प्रारंभ किया है? कि मोक्षमार्गकी बात ली है। मोक्षमार्गमें जो जीव आया है, मोक्षकी दिशामें प्रयाण कर रहा है, इसलिये उसे मार्गमें है ऐसा कहा जाता है। प्रतिसमय अनन्य भावसे मोक्षमार्गके प्रति जिसके परिणामकी गति है, ऐसे जीवको मोक्षमार्गी अथवा धर्मी कहनेमें आता है।

यह बात शुद्धज्ञानका स्वरूप समझानेके लिये गुरुदेवश्रीने यहाँ धर्मीजीवकी बात ली है। धर्मीजीवको विकल्प उत्पन्न होता है। उसकी अवस्थामें रागका विकल्प उत्पन्न होता है। मुख्यपने शुभराग होनेसे,

धर्मीजीवका अशुभ कम हो गया होनेसे दृष्टान्तमें रागमें-विकल्पमें कोई भी शुभरागका विकल्प उत्पन्न ऐसा समझकर बातको स्पष्ट करनी है। उसकी अवस्थामें '**जो विकल्प उठते हैं उन्हें धर्मी जानता है...**' उस विकल्पका ज्ञान धर्मीको होता है। अर्थात् धर्मीके ज्ञानमें विकल्पका प्रतिबिंब उठता है कि पूजा करुँ। पूजा करनेका जो विकल्प है उसका उसे ज्ञान हुआ। पूजा करुँ, मन्दिर जाउँ, भगवानके दर्शन करुँ। एक दृष्टान्त लेते हैं। धर्मीजीव है न। तो भगवानके दर्शन करनेका उसे राग-विकल्प हुआ, वह जो विकल्प हुआ उसका प्रतिबिंब ज्ञानमें उत्पन्न हुआ। तो विकल्त उसे ज्ञात हुआ। जानता है अर्थात् उसे विकल्प ज्ञात हुआ। समीप होनेसे, उसीकी अवस्थामें होनेवाला भाव होनेसे वह विकल्परूप सक्रिय भाव उसके ज्ञानमें प्रतिबिंबित होता है।

जैसे जीभ पर कोई भी स्वादवाला पदार्थ आनेसे उसका स्वाद ज्ञानमें प्रतिबिंबित होता है। क्योंकि उसे जिह्वा इन्द्रियका सन्निकर्ष हुआ। दूर हो तो उसका स्वाद ज्ञात नहीं होता। वैसे यहाँ उसकी अवस्थाका विकल्प है, जीवकी अवस्थाका-धर्मीजीवकी अवस्थाका विकल्प है इसलिये उसे ज्ञात न हो, यह प्रश्न नहीं है। क्योंकि वह उसका सन्निकर्ष है। उसे अत्यंत समीपता है। सन्निकर्ष है अर्थात् अत्यंत समीपता है उसे। तब उसे वह ज्ञानमें प्रतिबिंबित होता है कि ऐसा विकल्प हुआ।

'**जो विकल्प उठते हैं उन्हें धर्मी जानता है पर वह उन विकल्पोंको करता नहीं है।**' क्या कहते हैं? धर्मी कि जिसने 'मैं ज्ञानमात्र हूँ' ऐसा अपना अहंपना अपनेमें स्थापित किया है अर्थात् निजमें निजबुद्धि की है। ऐसे ज्ञानमें स्थित ऐसा धर्मी, साथ रहे विकल्पमें, साथमें उत्पन्न हुए विकल्पको जानता है, लेकिन करता नहीं है, ऐसा कहते हैं। अर्थात् उसके ज्ञानमें वह प्रतिबिंबित होता है कि यह हुआ। ऐसे प्रतिबिंबित होता है कि यह हुआ। परन्तु मैंने किया ऐसा अनुभव नहीं होता है।

क्या कहना है यहाँ? कि ज्ञात होता है कि यह हुआ। जैसे ख्याल आये कि बगलमें यह भाई बैठे हैं, बगलमें यह भाई बैठे हैं, बगलमें यह भाई बैठे हैं। ऐसा ज्ञात हुआ इसका मतलब ऐसा नहीं है कि मैंने उसे बिठाया है। वह अपनेआप आकर बैठे हैं। वे स्वयं आये हैं और स्वयं बैठे हैं। लेकिन ज्ञात हुआ इसलिये मैंने बिठाया, यह बात वाजबी है? नहीं। ऐसे जो विकल्प उत्पन्न हुआ, वह विकल्प स्वयं उत्पन्न हुआ है। मैंने किया है ऐसा अनुभव ज्ञानीको नहीं होता है, ऐसा कहना है।

क्यों नहीं होता है? कि मैं मात्र जानता हूँ और जो मात्र जाननेका मेरा स्वभाव है, उस स्वभाव द्वारा अथवा ऐसे स्वभावरूप ज्ञान द्वारा विकल्पका करना असंभव है। विकल्पको करुँ वह ज्ञान द्वारा असंभव है। ज्ञान विकल्पको कर नहीं सकता। विकल्प उसमें ज्ञात होता है, तब उसे जानता है ऐसा कहनेमें आता है। प्रतिबिंब उठता है तब जानता है, ऐसा कहनेमें आता है। लेकिन कर नहीं सकता।

मुमुक्षु :- विकल्पको कौन करता है?

पूज्य भाईश्री :- विकल्पको विकल्प करता है।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- लेकिन यदि विकल्पको करे तो विकल्प और ज्ञान एक हो जाय। यदि विकल्पको करे तो विकल्प और ज्ञान दोनों एक हो जाय। कर्ता-कर्म अभेदपने रहते हैं। ज्ञान ज्ञानको भी करे और ज्ञान विकल्पको भी करे, ऐसे दोनों कैसे हो सकता है? कैसे करे? ज्ञान ज्ञानको करता है या नहीं? ज्ञानकी उत्पत्ति हो उसमें ज्ञान ज्ञानको करता है। तो ज्ञान ज्ञानको भी करे और ज्ञान विकल्पको भी करे, ऐसा कैसे हो सकता है? तो ज्ञान और विकल्प दोनों एक हो जाय। मिथ्यादृष्टि जीवको भी उसका ज्ञान विकल्पको नहीं करता है। लेकिन उसे ऐसा भ्रमभाव है, मिथ्या आभास है कि मैं विकल्पको करता हूँ।

इसलिये कर्ता-कर्म अधिकारमें पहेल ऐसे लिया है कि देख भाई! जैसे ज्ञानक्रिया होती हुयी मालूम पड़ती है उसीप्रकार क्रोधादिक भी होते हुए मालूम

नहीं पड़ते। जैसे क्रोधादि क्रिया होती हुयी मालूम पड़ती है उसीप्रकार ज्ञानकी क्रिया होती हुयी मालूम नहीं पड़ती। माने क्या कहना है? कि दोनों क्रियाएँ स्वयं अपनेको करती है। ज्ञान ज्ञानक्रियाको करता है, क्रोध क्राधादि क्रिया करता है।

तेरी अस्ति, तेरी मौजूदगी, तेरा अस्तित्व ज्ञानमें है और क्रोधादिमें नहीं है। क्योंकि वह छूट जानेवाले भाव हैं। जो क्रोध आया वह मिट गया तो क्या तू मिट गया? तू मौजूद रह गया। लेकिन ज्ञान तो निरंतर मौजूद रहता है। पुनः अनुभवसे देखने पर मैं.. मैं.. मैंका अनुभव ज्ञानमें होगा, क्योंकि वह उसका स्वभावसिद्ध उसका उसमें स्वरूप अस्तित्व है, इसलिये उसीमें उसका अहंपना अनुभवमें आयेगा। मैंपनेका अनुभव करने पर क्रोधादिमें मैंपनेका अनुभव नहीं होगा। यह एक मालूम पड़ने सम्बन्धित तेरा अस्तित्व तुझे मालूम पड़ेगा, ऐसा कहना है। तेरी अस्ति तुझे ज्ञानमें मालूम पड़ेगी, तेरी अस्ति तुझे क्रोधादिमें मालूम नहीं पड़ेगी, क्योंकि वह छूट जानेपर तू मौजूद रहता है, तेरी अस्ति रह जाती है। वह छूट जानेपर तेरा नाश हो जाता है, क्रोधादि छूट जाने पर तेरा नाश हो जाता है, ऐसा नहीं बनता है। यह अनुभवसिद्ध है।

अतः ज्ञान है, शुद्धज्ञान है अथवा ज्ञान है वह विल्पको करता नहीं है। परन्तु विकल्पको नहीं करता है ऐसा अनुभव कौन करता है? कि जो ज्ञानमें अपने अस्तित्वका वेदन करता है वह। अथवा स्वयं ज्ञानमयपने वेदता है, उसे अपना अस्तित्व-अपनी मौजूदगी ज्ञानमयपने अनुभव की, ऐसे धर्मीजीवको, ऐसे लेना है। राग, विकल्प है वह मैं करता हूँ, ऐसा अनुभवमें नहीं आता है। साथमें हो रहा है ऐसा ज्ञान होता है, ज्ञानके बगलका एक भाव है कि जो हो रहा है, जाता है, हो रहा है, जाता है, हो रहा है। जैसे रास्तेके एक ओर फूटपाथ पर खड़ा हुआ मनुष्य ट्राफिकको देख रहा है कि दोनों ओरसे गाड़ियाँ आ रही है और जा रही है, आ रही है और जा रही है। देखनेवालेको क्या है? देखनेवाला यदि गाड़ीके साथ चला जाता हो तो किस ओर जायेगा? दोनों ओरसे आ रही हैं। वह तो असंभव है, ऐसा बनता नहीं।

वैसे ही विकल्प है उसे धर्मीजीव करता तो नहीं है, वह तो सवाल ही नहीं है कि उसे वह करे। लेकिन '**विकल्प सम्बन्धी जो ज्ञान होता है-उसका भी कर्ता विकल्प नहीं है।**' कहाँ-से दोनोंका कनेक्शन छूट गया है? यह कहते हैं। कर्ता-कर्मका सम्बन्ध मूलमें-से कहाँसे कट गया है? जो विकल्प सम्बन्धित ज्ञान हुआ कि ऐसा विकल्प हुआ, वह विकल्प भी ज्ञानका कर्ता नहीं है। क्योंकि ज्ञानमें ऐसे जाना कि ऐसा विकल्प हुआ। तो ऐशा जो ज्ञान हुआ, ऐसा विकल्प हुआ ऐसा जो ज्ञान हुआ, उस ज्ञानने ही ज्ञानको किया है। विकल्पने उस ज्ञानको नहीं किया है। भले वह ज्ञान विकल्पाकार हुआ हो, यहाँ ज्ञेय विकल्प है और ज्ञानमें ज्ञेयमें-ज्ञेयाकार ज्ञानाकार होता है, ज्ञेयाकार जैसा ज्ञानाकार होता है। यह केसरी रंग है तो केसरी ज्ञानमें ज्ञात होता है। ज्ञेयाकार जैसा ज्ञानाकार होता है। अक्षर काले हैं तो यहाँ काला ज्ञात होता है, कागज़ सफेद है तो यहाँ सफेद ज्ञात होता है। तो भी ज्ञेय ज्ञानको कुछ नहीं करता है। ऐसे लेना है।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- ज्ञान ज्ञानपने रहता है, ऐसा जब जाने तब तटस्थता हुई। लेकिन ज्ञानमें ऐसा भ्रमभाव हो कि यह मैंने किया, यह क्रिया मैंने की रागकी, वहाँ ज्ञान तटस्थ नहीं रहा। वहाँ ज्ञान रागके पक्षमें आ गया। जो राग हुआ, जिस रागको उसने जाना उसके पक्षमें ज्ञान ढल गया, वहाँ ज्ञान तटस्थ नहीं रहा।

पक्षातिक्रांतका जो विषय आता है न? उसमें यही लेना है कि अनादि मिथ्यादृष्टिको शुद्धनयका पक्ष है, वह भी उसे वहाँ रोकता है। शुद्धनयका पक्ष माने क्या है? शुद्धनय सम्बन्धित जो राग होता है कि मैं ऐसा आत्मा हूँ। निश्चय शुद्धात्मा मैं ज्ञानस्वरूप, मैं आनन्दस्वरूप, मैं परिपूर्ण ऐसा जो राग, राग वह पक्ष है, उसका जो राग उत्पन्न हुआ वह पक्ष हुआ।

उस पक्षमें जबतक है, तबतक वह निर्विकल्प स्वानुभूतिमें नहीं आता है। ऐसे लेना है। क्योंकि वहाँ, मैंने राग किया, मैंने ऐसा राग किया, मैं ऐसा राग करनेवाला हूँ, यह बात चालू रही है। रागके साथ उसका एकत्व चालू रहा है। रागका कर्ता-कर्मपना चालू रहा है। तबतक उसे भगवानके दर्शन नहीं होते। ऐसा है। भले वहाँ माला जपता है, जाप जपता है भगवानका, लेकिन अभी रागमें मैं-पना करके खड़ा है, एकत्व होता है इसलिये क्या होता है? एकत्व होता है माने क्या होता है? कि ऐसे रागांशमें भी मैं-पना करके खड़ा है, तबतक भगवान ऐसा कहते हैं कि तू विरोध पक्षमें खड़ा है। भले ही तू नाम मेरा ले रहा है, वह ठीक है, लेकिन उससे सम्बन्ध नहीं है, मुझे तो एक ही बात है कि तेरा पक्ष छूट जाना चाहिये। रागके पक्षमें है। ऐसी बात है। इस तरह जो तटस्थ है वह पक्षकार नहीं है, पक्षकार है वह तटस्थ नहीं है।

'**विकल्प सम्बन्धी जो ज्ञान होता है-उसका भी कर्ता विकल्प नहीं है।**' विकल्पाकार विकल्प सम्बन्धी ज्ञान हुआ इसलिये विकल्पाकार ज्ञान हुआ उस ज्ञानका कर्ता वह ज्ञान है और विकल्प नहीं है। सदृश्य भाव होने पर भी। वास्तवमें वह ज्ञेय ज्ञानका कर्ता नहीं है। तो फिर ज्ञान ज्ञेयको करता है, विकल्पको करता है यह सवाल नहीं रहता है। राग आये फिर भी राग है इसलिये राग सम्बन्धित ज्ञान ज्ञानीको होता है ऐसा नहीं है। राग जब उत्पन्न होता है, तब वह राग है इसलिये उस राग सम्बन्धि यहाँ ज्ञान होता है, भले राग जैसा ही ज्ञान होता है कि ऐसा राग हुआ, ऐसा ज्ञान हुआ, तो भी राग है इसलिये वह ज्ञान है, ऐसा नहीं है। ज्ञानका अस्तित्व बिलकूल स्वतंत्र है। साथ रहा ज्ञेय रागरूप हो, द्वेषरूप हो, क्रोधरूप हो, अन्य पदार्थरूप हो तो भी उसके कारणसे यहाँ ऐसा ज्ञान हो रहा है अथवा ज्ञान है इसलिये वैसा ज्ञान हो रहा है, ऐसा नहीं है। ज्ञान है वह भी अपनी स्वतंत्रताके कारण उसकी मौजूदगी है और वैसे ज्ञेयाकाररूप ज्ञान है उसमें भी ज्ञानकी ही स्वतंत्रता है, नहीं कि ज्ञेयका उसमें कोई कार्य-कारण है। ऐसा है।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- नहीं, बिलकूल नहीं। श्रवण करनेमें, श्रवण सम्बन्धित राग होनेमें श्रवणका जो राग हुआ उस रागकी कोई मदद नहीं है, ऐसा कहना है। क्योंकि ज्ञानमें जाननेकी शक्ति अपने कारणसे है। अपनी उपादान शक्तिके कारण वह जानता है। राग पहले हुआ इसलिये जाना है, ऐसा बिलकूल नहीं है।

मुमुक्षु :-

पूज्य भाईश्री :- ठीक है, यहाँ आना हुआ, श्रवणका राग हुआ, श्रवण किया लेकिन उस वक्त जो ज्ञान काम करता है, वह उस समयकी अपनी पूरी स्वतंत्र शक्तिसे काम करता है। पूर्व पर्यायें ये सब हुई इसलिये यहाँ यह ज्ञान हुआ, उस कारणसे अज्ञान हुआ अथवा उसने ज्ञान होनेमें मदद की, ऐसा बिलकूल ज्ञान पंगू नहीं है।

मुमुक्षु :- ऐसे ले तो क्या भूल होती है?

पूज्य भाईश्री :- ऐसे ले तो अपनी शक्तिका अनादर होता है, अपनी ज्ञानशक्तिका निषेध होता है, यह दोष आता है। अपनी स्वतंत्रताका घात होता है। कौन अपनी स्वतंत्रताका घात करनेके लिये तैयार होगा? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- यह वाक्य गुरुदेवश्री बहुत बोलते हैं।

पूज्य भाईश्री :- मैं आपको ऐसा कहूँ कि आप मेरे बराबर हो। मेरे जितने ही आप, आप थोड़ा भी मेरे-से निम्न कोटिके नहीं है। मात्र मैं जितना आपको कहूँ उतना आपको करना होगा। तो आप कहोगे कि वह बात आपने सच्ची नहीं की है। वह बात ही जूठी की है। आप मेरे तुल्य हो, वह बात जूठ कही है। यदि आप कहो ऐसा ही मुझे करना हो तो मेरी और आपकी बराबरी रही कहाँ? तो आप कहनेवाले और मैं आपको सुननेवाला हो गया। परतंत्र हो गया। ऐसी बात बिलकूल नहीं है।

वास्तवमें तो ज्ञान अग्र है। राग अग्र नहीं है। सर्व कालमें ज्ञान है। जब यहाँ आनेका राग हुआ तब भी ज्ञान था, जब सुना तब भी ज्ञान था। ज्ञान

किसी भी समय नहीं है ऐसा नहीं है। ज्ञान पहले है और उसके बाद उसमें ज्ञेय ज्ञात होता है। अतः स्वयं पहले है और बादमें उसमें ज्ञेय प्रतिबिंबित होता है। दोनों है समकालमें। फिर भी हयातीपने-अस्तिपने अग्र रहनेका उसका स्वभाव है। एक कालमें होनेके बावजूद अग्र रहने-मुख्य रहनेका उसका स्वभाव है। ऐसे जो मुख्य रहनेका उसका स्वभाव है, उसकी मुख्यताको स्वीकारता है, वह ज्ञानकी अधिकताको स्वीकारता है, वह आत्माकी अधिकताको स्वीकारता है। जो ज्ञानकी और आत्माकी अधिकताको स्वीकारता है वह रागमें लिपटता नहीं, ज्ञेयमें लिपटता नहीं है। यह उसका विज्ञान है। 'कर इन्द्रियजय ज्ञानस्वभाव रु अधिक जाने आत्मको'। लोग ऐसा कहते हैं, इस दुनियामें यह एक बात बहुत प्रसिद्ध है सर्व संप्रदायमें कि इन्द्रियोंको जीतना दुष्कर है। इन्द्रियोंको जितना अत्यंत दुष्कर है। ऐसा लोकमें प्रसिद्धपने कहा जाता है। यहाँ जैनदर्शनमें कहते हैं कि यदि आत्माकी अधिकता करे और वह भी कैसे? कि ज्ञानस्वभावसे करे। वहाँ ज्ञानस्वभावसे बात ली है। ज्ञानस्वभाव द्वारा यदि आत्माकी मुख्यता हो-अधिकता हो तो सहजपने इन्द्रियोंका जीतना होता है, उसमें कोई मुश्किल बात नहीं है। उसमें कोई मुश्किल बात नहीं है। और जैनदर्शनके संतोंने उस बातको प्रसिद्ध की है। नग्न दिगंबर अवस्थामें रहकर, किसी भी प्रकारके आधार बिना रहकर, मकान या किसी भी प्रकारके वस्त्र आदिका आश्रय नहीं रखकर उन्होंने अपने स्वरूपको घोषित किया है कि ज्ञानस्वभावको मुख्य करनेपर इस जगतका कोई भी उल्कापात हमें विचलित नहीं कर सकता।

एक चिंऊँटी घुमती हो उतनेमे ध्यान पलट जाता है। काटे तब तो ध्यान पलट जाये उसमें कोई नयी बात है। लेकिन घुमती हो, शरीरके कोई अंग पर थोड़ी कुलबुलाहट हो तो उपयोग पलट जाता है। विचार कीजिये, श्रेणिक महाराजाने मृत सर्प जिन पर डाला और जंगली चिंऊँटी, कीड़े जैसी चिंऊँटी होती है, बड़े लाल कीड़े होते हैं। हज़ारों असंख्य कीड़े रोम-रोममें डंक मारे और जो ध्यानमें डुबकी लगाये, उपयोग पलटे नहीं उस उपयोगकी ताकत कितनी! ऐसी शक्तिका यहाँ भान करवाना है। स्वतंत्रता बतलाकर स्वतंत्रताकी प्रेक्टिस करवानी है। परतंत्र हो गया है उसे स्वतंत्रताकी प्रेक्टिस करवानी है कि देख तेरी शक्ति।

मुमुक्षु :- ज्ञानका वेदन और बाहर जो चिंऊँटी डंक मारती है उसका ज्ञान..

पूज्य भाईश्री :- उसका ज्ञान होता है। लेकिन ज्ञान होते ही ज्ञानमें डूबकी लगाते हैं, ज्ञेयकी ओर झुकते नहीं है। उनका ज्ञान ज्ञेयकी ओर झुकता नहीं है। उनके ज्ञानमें ऐसा अनुभव होता है कि यह ज्ञात होता है, ज्ञानको डंक मारा नहीं जा सकता। अत्यंत सुन्दर विषय है कि यह ज्ञानका पिण्ड है पूरा उस ज्ञानपिण्डको कोई डंक नहीं मार सकता। ऐसा मुझे अनुभव हो रहा है कि मुझे डंक नहीं मारा जा सकता। बाहर ही बाहर लोटता है। असंख्य कीड़े हैं, देहको डंक मारते हैं, उस सम्बन्धित जो वेदन होता है वह ज्ञात होता है। परन्तु वेदनकी सत्तामें ज्ञान नहीं है और ज्ञानकी सत्तामें वेदन नहीं है, उसका अनुभव होता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको दुःखका वेदन नहीं होता है, अपितु ज्ञानका वेदन होता है।

पूज्य भाईश्री :- ज्ञानका ही वेदन होता है और वह वेदन उतना उग्र एवं एकाकार होता है कि वह ज्ञात होना एकबार उपयोगसे बन्द हो जाता है, ज्ञान उतना उसमें लीन हो जाता है। तब उस ज्ञानवेदनमें वे ज्यादा एकाग्र होते हैं। ज्ञानवेदन तो है लेकिन उसमें एकाग्रता उत्पन्न होती है, तब उपयोग छूट जाता है। उपयोग छूट जाता है इसलिये उन्हें उस वक्त दूसरा कुछ ज्ञात नहीं होता। एकाकार ज्ञानका आनन्दका उफ़ान है, उस आनन्दके उफ़ानमें लीन हो जाते हैं। बस! मानों कुछ नहीं है। पुनः जब बाहर आते हैं, साधकदशा है, इसलिये ज्ञात होता है। ज्ञात होता है इसलिये उसमें ज्ञान ज्ञात होता है, इसलिये फिरसे उसका उफ़ान आता है। जैसे ही ज्ञेय ज्ञेयमें प्रतिबिंबित

हो, पुरुषार्थ मन्द होनेपर विकल्प आये और विकल्प आनेपर वहाँ उन्हें संयोग और विकल्पका ज्ञान होता है, उसमें मुख्यपने ज्ञानका अनुभव होनेसे पुनः उस ज्ञानकी एकाग्रतामें आ जाते हैं, इसलिये पुनः उपयोग एकाकार हो जाता है। इस तरह उनकी दशामें, बारंबार मुनिदशामें शुद्धोपयोगकी अनुभूति है वह चलती ही रहती है। होती ही रहती है। नैसर्गिकरूपसे ऐसी दशा हो चूकी है कि उसके लिये उन्हें विकल्प नहीं करना पड़ता, अपितु वह प्रक्रिया सहजपने होती रहती है। इसलिये उन्हें कोई भी उपसर्ग परिषह है उसमें तनिक भी यह ठीक नहीं है, वह प्रकार आता ही नहीं है। ज्ञात जरूर होता है, लेकिन यह ठीक नहीं है अथवा यह ठीक है, ऐसा प्रकार नहीं बनता।

मुमुक्षु :-

पूज्य भाईश्री :- वह निश्चय। निश्चय क्या शब्द है? निश्चयविषैं स्थित। निश्चयविषैं स्थित। निश्चय अर्थात् निश्चय स्वरूप, ज्ञानस्वरूपमें स्थित। 'निश्चयविषैं स्थित साधुजनों'। निश्चयविषैं स्थित अर्थात् निश्चय स्वरूपमें स्थित, स्वभावमें स्थित। स्थित नाम वहाँ शुद्धोपयोग हो गया। उसे जितेन्द्रिय कहनेमें आता है। अर्थात् इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर जो झुकते नहीं है और हारकर नाशको प्राप्त होते हैं, हारकर नाशको प्राप्त होते हैं। इसलिये उन्हें जितेन्द्रिय कहनेमें आया है।

यहाँ तो बहुत सुन्दर विषय है। वह प्रेक्टिस कहाँ-से हुई? ऐसी साधुदशाकी, संतदशाकी प्रेक्टिस कहाँ-से हुई? ये सवाल है। कि वह प्रेक्टिस जबसे सम्यग्दर्शन हुआ तबसे जो राग होता था, वह राग भी इस ज्ञानको नहीं करता है, ज्ञान स्वयं हो रहा है, ऐसे अनुभवमें आगे बढ़ते.. बढ़ते.. बढ़ते वह मुनिदशा आयी है, ऐसा कहना है। उस अनुभवमें बढ़ते-बढ़ते वह मुनिदशा आयी है। अस्थिरता तोड़ते गये।

इष्ट-अनिष्टपना सम्यग्दृष्टिको चतुर्थ गुणस्थानमें चारित्रमोह सम्बन्धित सीमितरूपसे होता है। वह भी उसके ज्ञानमें उसको निषेध आता है, इसलिये वह भी खत्म होता हुआ मुनिदशाको प्राप्त करता है। तब उसे कोई भी ज्ञेयोंके प्रति इष्ट-अनिष्यपना नहीं होता है।

.. यदि उसकी एकाग्रता होती है, बार-बार एकाग्रता होती है, एकाग्रता यदि आगे बढ़ गया, उसमें-से च्युत नहीं हुआ तो अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। परिपूर्ण दशा हो जाती है। और जहाँ केवलज्ञान हुआ, वहाँ देहके परमाणु बदल जाते हैं।

मुनि हो, मुनि स्नान तो करते नहीं है। शरीर पर पसीना होता है, रज लगती है, जो खुल्ले अंग है उसमें फ़र्क़ पड़ता है न? हाथ-पैरमें रज लगती है, हम देखते हैं। जो अंग ढके हुए हैं, वह उतने मलिन नहीं होते हैं, फिर भी पसीना आदि मैलसे होता है। तो ऐसा मलिन शरीर हो गया है, शरीर गंदा दिखता हो, क्योंकि बरसोंसे स्नानादि नहीं किया है, पुनः कोई आश्रय नहीं है, कपड़ा नहीं है, जहाँ केवलज्ञान होता है परमाणु परम औदारिक हो जाते हैं। तेज-तेजका पुंज देख लो। दिव्य शरीर हो जाता है। मानो आत्मा परमाणुमें घुस गया हो! जहाँ शुद्धात्मा हो गया, परिपूर्ण शुद्धात्मा हो गया, वहाँ परमाणुमें आत्मा घुस गया। ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- उपसर्ग-परिषह भी नाश होकर..

पूज्य भाईश्री :- खत्म हो जाते हैं। जमीनसे ऊपर आकाशमें पाँचसौ धनुष ऊपर उनकी स्थिति हो जाती है। फिर आकाशकी स्थिति हो जाती है। नीचे एक कमलकी रचना हो जाती है। कमलसे भी निराधार, उसे स्पर्श किये बिना उनका आसन होता है। खड़गासन भी हो सकता है, पद्मासन भी हो सकता है, दोनोंमें-से जो कोई अवस्था ध्यानकी हो। और शरीर देखो तो जैसे ट्युब लाईटमें कहीं भी अंधेराका कण दिखाई नहीं देता। ऐसे तेज-तेजका पुंज पूरा शरीर एकदम तेजस्वी परम औदारिक हो जाता है। सब परमाणु एक समयमें पलट जाते हैं। केवलज्ञान हुआ उसी समय पलट गये। उसी समय सब परमाणु भी पलट जाते हैं। अवस्थांतर हो जाता है। इतना तो यहाँ पुद्गलमें फेरफार हो जाता है।

मुमुक्षु :- मनुष्य शरीर..

पूज्य भाईश्री :- वह तो जब सिद्ध होते हैं

तब।

मुमुक्षु :- ये तो परमाणुकी दृष्टिसे, परमाणुकी दृष्टिसे शरीरका सम्बन्ध रहता है?

पूज्य भाईश्री :- अरिहंतको तो है न। अरिहंत सदेह अवस्था है। केवलज्ञान हुआ तब अरिहंत दशा हुई न। तब मन-वनच-कायाका योग है। त्रियोग है अभी। लेकिन उसके साथ उन्हें किसी भी प्रकारका जुड़ान नहीं है। ये शरीर बदल गया तो अच्छा हुआ, यह प्रकार वहाँ नहीं है। क्योंकि यह शरीर गंदा हुआ था वह अच्छा नहीं था, ऐसा प्रकार नहीं था इसलिये। इसलिये ऐसा हुआ है। क्योंकि सुगंध और दुर्गंधका इष्ट-अनिष्टपना परमाणुकी मलिनता और पवित्रताका इष्ट-अनिष्टपना नीचेसे खत्म किया है, पहलेसे खत्म किया है। ऐसी वीतरागदशा बढ़कर पूर्ण केवलज्ञान वीतरागदशा वहाँ हो गयी है। और उसका मूल यहाँ सम्यग्दर्शनसे उत्पन्न होता है। उसकी प्रेक्टिास है वह सम्यग्दर्शनसे शुरू होती है।

'**राग होने पर भी, रागके कारण ज्ञानीको राग सम्बन्धी ज्ञान होता है-ऐसा नहीं है।**' राग आये फिर भी राग है, रागकी मौजूदगी है इसलिये यहाँ उस सम्बन्धित ज्ञानकी मौजूदगी है अथवा ज्ञानका होना है, मौजूदगी भी उसके कारणसे नहीं है और होना भी उसके कारणसे नहीं है। ऐसा है। एकदम स्वतंत्र शक्ति है, स्वतंत्र अस्तित्व है। उसकी स्वतंत्रताका अनुभव करने पर रागादिकी परतंत्रता छूट जाती है। ऐसा है।

भाईका हाथ कट गया था, उस वक्त उनके रिश्तेदार सब स्वास्थ्य पूछनेको आते थे। ये जो हाथ कट गया और वेदना हुई, उसे कौन छुड़ा सकता है? उस वेदनासे कौन मुक्त करवा सकता है? इंजेक्शन काम नहीं करते थे, डॉक्टर काम नहीं करता है, पैसेकी पट्टी लगा दे तो कहीं पीड़ा नहीं मिटती, हीरे-जौहारत यहाँ लटका दे तो उसका हर्ष होकर पीड़ा नहीं मिटती, और आप जैसे हज़ारों रिश्तेदार साता पूछते हैं इसलिये यहाँ पीड़ा कम होती है, ऐसा भी नहीं है। कोई बाह्य साधन उसकी वेदना कम करनेके लिये बेकार है। तो ये आप सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु है कि जिस ज्ञान द्वारा उस पीड़ाका भिन्न अनुभव होता है, उस ज्ञानका मूल्य कितना! वह सर्वोपरी वस्तु है, उसका कोई मूल्य नहीं हो सकता।

इस जगतमें चार गतिके जन्म-मरणके दुःख, असाताके दुःख और अनेक प्रकारकी प्रतिकूलताका भयका दुःख, ज्ञानके अलावा किसी भी प्रकारसे मिटे ऐसा नहीं है। उसका एक ही उपाय है। यदि वह शुद्धज्ञानको जाने, अनुभव करे और उसमें स्थिर रहे तो ही उसे अपनी स्वतंत्रताका स्वतंत्र शक्तिका आनंद सहित अनुभव हो और दुःखकी गंध रहे नहीं। अनुभव हो उसमें विशेषता यह है कि अपनी ज्ञानशक्तिका, ज्ञानस्वरूपका अनुभव करने पर आनंदसहित अनुभव होता है। यह उसकी विशेषता है, यह उसका स्वरूप है। तब उसे दुःख और भय कुछ नहीं रहता।

'**राग और ज्ञानीके ज्ञानमें ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है,...**' राग है वह ज्ञेय है और ज्ञानीका ज्ञान है वह उसका ज्ञायक है। उतना ज्ञेय-ज्ञायक मात्र सम्बन्ध है। फिर भी राग है वह ज्ञानका कर्ता नहीं है। राग हरगिज़ ज्ञानको करता है ऐसा तो बिलकूल नहीं है। यह राग हुआ इसलिये ज्ञान हुआ, श्रवण करनेकी इच्छारूप राग हुआ इसलिये ज्ञान हुआ, ऐसा बिलकूल नहीं है। शब्द उत्पन्न हुआ इसलिये सुनाई दिया, शब्द उत्पन्न हुआ इसलिये शब्द सम्बन्धित ज्ञान हुआ ऐसा हरगिज़ नहीं है। ज्ञान ज्ञानके कारण हो रहा है।

ऐसा कहते हैं कि थोड़ी-सी जाँच कर। तू ज्ञानस्वरूप है, ऐसा तुझे कहते हैं और थोड़ा अन्दर तेरे ज्ञानस्वरूपको सँभाल, जाँच कर तो तुझे हमारी बातकी प्रतीति होगी, विश्वास होगा कि वास्तवमें यह ज्ञान स्वयं अपनी शक्तिसे हो ही रहा है। उसके उत्पत्तिको रोकनेमें इस जगतमें कोई समर्थ नहीं है। ज्ञानकी मौजूदगीको मिटानेके लिये कोई भी समर्थ नहीं है, ज्ञानकी ज्ञानपर्यायपने उत्पत्तिको मिटानेको, रोकनेको इस जगतमें कोई समर्थ नहीं है। ऐसा जो

ज्ञानका अव्याबाधत्व है, जिसे कोई बाधा नहीं कर सकता ऐसा जो उसका अव्याबाध स्वरूप है, उस स्वरूपका तू अनुभव कर तो तुझे कोई तकलीफ नहीं है, कोई दुःख नहीं है, कोई बाधा नहीं है, कोई भय नहीं है, कहीं कोई आँच आये ऐसा नहीं है, यह परिस्थिति है। और यही जन्म-मरणसे और सर्व प्रकारके दुःखसे छूटनेका यह एक ही उपाय है।

'**राग उस ज्ञानका कर्ता नहीं है।**' राग है वह ज्ञानको करता नहीं। इसप्रकार अन्दरमें भेदज्ञान है, राग और ज्ञान सम्बन्धीका जो भेदज्ञान है, वह भेदज्ञान मूल वस्तु है। केवलज्ञानकी लब्धि उत्पन्न करनेवाली चीज है। पूर्ण स्वरूपकी लब्धि भेदज्ञानरूप मूलमें रही है। यह एकदम नींवका विषय है।

समयसारमें ये जो विषय लिया है, इस विषयमें गुरुदेवश्रीने अमृतका सरोवर देखा है। गुरुदेवश्रीको जब पहली बार समयसार हाथमें आया और यह विषय देखा कि अरे..! अन्दरमें रागरूप विकल्पसे भिन्न ज्ञान है, निराला ज्ञान है-निराला ज्ञान है, जैसे खजानेमें चरुका काँठा दिखे, खोदते-खोदते जहाँ पूरा खजाना दिख गया, वैसे उन्होंने इस भेदज्ञानमें अमृतका सरोवर उछाला मारता हुआ देखा, समयसारमें। पहली बार समयसार हाथमें आया है। यह विषय उनका अत्यंत चार्मिंग विषय था। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार और कर्ता-कर्म अधिकार इस दो अधिकार परके प्रवचनोंमें तो गुरुदेवको जो रस था, जबसे उनका समयसारके प्रति आकर्षण हुआ, उसका मूल विषय ही यह है। वहाँ-से लिया है।

इसमें एक बात ली है, अनुभव प्रकाशमें। यहाँ-से लिया है। विवेक, विवेकका स्वरूप। भेदज्ञान है वह विवेक करता है। इसलिये '**अब विवेकका स्वरूप,...**' ऐसा करके लेते हैं। '**परिणतिशुद्धिका (निर्जराका) स्वरूप इसप्रकार है :-**' '**स्व-पर भेदज्ञानके निरन्तर अभ्याससे...**' आगे थोड़ा पैरेग्राफ है उसमें उन्होंने आत्मभावना ली है। थोड़ी आत्मभावना ली है। क्योंकि भेदज्ञान भावनासे होता है। भावनाके सिवाय भेदज्ञान होता नहीं। इसलिये एक बड़ा पैरेग्राफ है। लेकिन मूल मुद्दा लेते हैं, जो यहाँ स्पर्श करता है। '**स्व-पर भेदज्ञानके निरन्तर अभ्याससे शुद्धचैतन्यतत्त्वकी लब्धि (होती) है,...**' यह शब्दप्रयोग यहाँ किया है। लोग कहते हैं न कि तपश्चर्या करे तो लब्धि प्राप्त हो, लब्धिकी प्राप्ति हो। ये लोग करते हैं न? उपवास करे, अनेक प्रकारकी तपश्चर्या करे। लब्धि होती है। यहाँ लब्धि शब्द लिया है। '**स्व-पर भेदज्ञानके निरन्तर अभ्याससे शुद्धचैतन्यतत्त्वकी लब्धि (होती) है,...**' पूर्ण चैतन्यतत्त्व प्राप्त होता है, कब्जेमें आता है। इतनी बड़ी लब्धि होती है। केवलज्ञानकी लब्धिसे भी अनन्तगुना केवलज्ञानस्वरूप जो है, उसकी लब्धि होती है। ये भेदज्ञान लब्धिका साधन है। सामान्य बात नहीं है।

कोई ऐसा कहे, ये चक्रवर्तीका खजाना है न? वह अखूट है। उसमें-से चक्रवर्ती दान देता ही रहता है। अक्षयपात्र जैसा है वहाँ। खत्म ही न हो। वहाँ उसे कर लेकर तिजोरी भरनेका प्रसंग नहीं है। राज्यमें कर लेकर तिजोरी भरते हैं, ऐसा चक्रवर्तीको नहीं है। प्रजाको पीड़ित करके उनसे नहीं लेना है। उसे प्रजाको शांति देनेके लिये, सुख-शांति देनेके लिए उसके पास अक्षयपात्र है। वह देता ही रहे और अस्तमाल करता ही रहे, खत्म नहीं होता ऐसा उसका खजाना होता है। ऐसे खजानेकी कोई चाबी दे दे कि इस पर आपका कब्जा, ये आपकी चाबी। ये चाबी भी हीरा-रत्नजडित उससे ही बनी है और ये चाबी अब सँभालिये। ये भेदज्ञान वह चाबी है।

मुमुक्षु :- कल बहिनश्रीने भेदज्ञानकी बात ली थी।

पूज्य भाईश्री :- भेदज्ञानकी बात ली थी। बहुत सुन्दर चर्चा चलती है। कल हम लोग सोनगढ़ गये थे, वह चर्चा चली थी कि भेदज्ञानसे ही आगे बढ़ना है और भेदज्ञान ही काम करता है। वह तो कोई भी बात आये तो वह विषय आये बिना नहीं रहता। भेदज्ञानकी बात बहुत सुन्दर चली थी।

मुमुक्षु :- मूल विषय है न।

पूज्य भाईश्री :- क्योंकि अन्दरमें रागकी स्पृहा छूट जाती है, उसे रागके विषयकी स्पृहा छोड़ना सहज

है। लोग क्या कहते हैं कि परवस्तु है उस परवस्तुका आकर्षण ऐसा है कि आकर्षण नहीं होना चाहिये ऐसा विचार काम नहीं लगता, आकर्षण हो जाता है। अब वहाँ-से छूटनेके लिये यहाँ एक सुन्दर उसका प्रोसेस है कि पहलेसे ही काटते हैं। आकर्षण करनेवाला जो राग है, उस रागका ही यहाँ डिसकनेक्शन करना है। रागका सम्बन्ध तोड़ना है, भेदज्ञानसे राग और ज्ञानके भिन्नत्वसे। रागका विषय तो फिर नहीं के बराबर है। वह दूर रह जाता है। दूरसे ही छूट जाता है।

जैसे कोई ऐसा कहे, कोई ब्राह्मण ऐसा कहे कि मेरे रसोईघरमें अब्राह्मणको मैं आने नहीं दूँगा। तो फिर अंत्यज व्यक्तिका आनेका कहाँ सवाल है? बनिया हो, खत्री हो उनको भी मेरे रसोईघरमें मैं पैर नहीं रखने दूँगा। ये तो मेरा शुद्ध रसोईघर है। शुद्ध आहार लेता हूँ। उसमें ब्राह्मके अलावा किसके कदम नहीं चाहिये। तो फिर बनियेको नहीं देता है तो फिर अंत्यज जातिकी व्यक्तिका आनेका कहाँ सवाल है? वैसे ज्ञान ऐसा कहता है कि मैं रागके साथ सम्बन्ध नहीं करता हूँ तो फिर रागके विषयके साथ ज्ञानको सम्बन्ध करनेका सवाल कहाँ उत्पन्न होता है? यह एक, भेदज्ञान करे उसे जितेन्द्रियता आना कितना सहज है और कितना आसान है। लोग ऐसा कहते हैं कि वह कठिन है, यहाँ कहते हैं कि आसान है। उसकी कुशलता, उसकी प्रेक्टिस इस जैनदर्शनके विज्ञानमें रही है। ये वैज्ञानिक पद्धति है। वह शब्दप्रयोग यहाँ बहुत सुन्दर किया है। भेदज्ञानके विषयमें इस स्थान पर बहुत बातें ली है।

'**शुद्धचैतन्यतत्त्वकी लब्धि (प्राप्ति) होती है,...**' ऐसा लिया है। भेदज्ञानके निरन्तर अभ्याससे यदि अन्दरमें प्रयोग किया जाय तो उसे चैतन्यकी लब्धि है, '**उससे राग-द्वेष-मोह मिटता है, कर्मका संवर होता है, तब कर्म मिटनेसे निजज्ञानसे निर्जरा होती है, तब सकलकर्म क्षय(रूप) निजपरिणाम होनेसे भावमोक्ष होता है;...**' भावमोक्ष होता है '**तब द्रव्यमोक्ष होता ही होता है। इसलिये भेदज्ञानके अभ्याससे परमपद सिद्ध (होता) है। वह भेदज्ञान प्रकट करनेका विचार करनेमें आता है।**' ऐसा करके पुनः विषयका प्रारंभ करते हैं। बहुत सुन्दर शैली है। एक ही बात करे और फिर वह कैसे होता है, ऐसा कहकर प्रारंभ करते हैं। बहुत सुन्दर विषय है। ये अनुभव प्रकाश तो छोटा है लेकिन अनुभवका इतना रसिक ग्रन्थ है कि आप सैंकडो बार पढ़ो न।

मुमुक्षु :- कौन-सा पृष्ठ है?

पूज्य भाईश्री :- इस प्रतमें ७७ है। मैं घरपर जो प्रत पढ़ता है उसमें अलग पृष्ठ पर यह विषय था। अधिकारका ख्याल था इसलिये तुरन्त मिल गया। यह समाधि अधिकार है। निर्विकल्प समाधि है उसका वर्णन करनेमें आता है। ऐसा कहकर यह अधिकार लिया है। उसमें भेदज्ञानका प्रकरण लिया है। समाधि वर्णन। '**अब कुछ समाधिका वर्णन करनेमें आता है।**' ये अधिकारका नाम है।

क्या कहते हैं? '**ज्ञानभाव...**' भेदज्ञान कैसे करना? भेदज्ञानका प्रयोग कैसे करना? उसका इसमें हूबहू बयान है। '**ज्ञानभाव-जाननेरूप उपयोग-**' ज्ञानभाव अर्थात् जाननेरूप उपयोग '**विभावभावको अपना जानता है;...**' वर्तमानमें जो जाननेरूप उपयोग है वह, राग मैं करता हूँ, राग मुझे होता है, राग मेरेमें है ऐसा जान रहा है। '**उस विभावको जाननेकी शक्तिको आत्मा अपनी जाने।**' अब क्या है? शक्तिको जाने। यहाँ गुरुदेवको जो पोईन्ट लेना है, वह यही लेना है कि राग सम्बन्धित ज्ञान रागसे नहीं हुआ है। ज्ञेयका ज्ञान ज्ञेयसे नहीं होता है। तेरी शक्तिसे तेरा ज्ञान होता है। उस शक्तिको पकड़ना चाहिये।

विभावको जाननेकी भी जो शक्ति है, जाननेकी जो शक्ति है उसे अपनी शक्ति जाने और अपनी शक्ति जानकर जानरूप अर्थात् मात्र ज्ञानरूप हूँ, ऐसा परिणमन करे। जो ज्ञान परिणमन करता है, उसमें ऐसा परिणमन करे कि मैं तो जाननेकी शक्तिवाला हूँ, इसलिये जानता हूँ, मात्र जानता हूँ। इस प्रकार ज्ञानरूप परिणमन करे। राग सो मैं, ऐसे रागरूप परिणमन न

करे, ऐसा कहना है। ज्ञानरूप परिणमन करे।

'**(ज्ञानरूप) परिणमन करे...**' अर्थात् तब वह '**ज्ञानरस पीओ।**' ऐसा लिया। यह इसकी रसिकता है, लिखनेवालेकी यह रसिकता है। ज्ञानरस पीता है, यहाँ उसको ज्ञानका रस उत्पन्न होता है। '**ज्ञानरस पीओ। विभावोंको न्यारा-न्यारा जाने।**' यह भेदज्ञान है। '**विभावोंको न्यारा-न्यारा जाने। विभावरूप कर्मधारा, ज्ञानपरिणामरूप सुधाधारा...**' देखिये! अमृतधारा। चैतन्यधारा सो अमृतधारा। लिखनेकी बहुत सुन्दर पद्धति है उनकी।

'**विभावरूप कर्मधारा, ज्ञानपरिणामरूप सुधाधारा-दोनों धाराओंको न्यारी-न्यारी जाने।**' परिणामधारा है, उस ज्ञानधारामें ज्ञानका प्रवाह चल रहा है, विभावधारामें कर्मका प्रवाह चल रहा है। ज्ञानधारामें अमृतरस भरा है, विभावधारामें विभावकी कडुआहट भरी है। दोनों स्वाद भिन्न-भिन्न है न? भिन्न-भिन्न है। '**न्यारी-न्यारी जाने। पुद्गल-अंश, आठ कर्म और शरीर भिन्न हैं, जड़ हैं; चेतन उपयोगमय है; (ऐसा) उनका विवेचन (पृथक्करण) करे। भिन्न प्रतीतिभाव करे कि शरीर प्रत्यक्ष जड़रूप रहता है, सदा (कभी भी) उसमें चेतनाका प्रवेश नहीं होता, चेतना जड़ नहीं होती; यह प्रत्यक्ष सर्व ग्रन्थ कहते हैं, सर्व जन कहते हैं, जिनवाणी विशेषरूपसे कहती है;...**' उतनी भेदज्ञानकी बात ली है। उसके बाद लक्ष्य-लक्षणका विषय आगे लिया है। फिरसे ज्ञानका अभ्यास कैसे करना वह बादमें आयेगा।

कहते हैं कि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है ऐसा कहनेमें आये, तो भी '**राग उस ज्ञानका कर्ता नहीं है।**' सम्बन्ध होने पर भी राग ज्ञानका कर्ता नहीं है। राग है वह रागमें परिणमता है, ज्ञान है वह ज्ञानमें परिणमता है। ज्ञानकी शक्ति ज्ञानके कारण परिणमनेकी है, जानना ज्ञानशक्तिके कारण है। रागके कारण या ज्ञेयके कारण बिलकूल नहीं है। इतना मात्र विचारमें नहीं समझना है, ऐसा अपने ज्ञानको पकड़कर समझना है।

यह समझनेका प्रकार कैसा होना चाहिये? कि अपने चलते हुए ज्ञानके अनुभवको पकड़कर समझना चाहिये। मात्र विचारसे और सुनकर समझना चाहिये वह प्रकार नहीं होना चाहिये। तो उसे उसका प्रयोगात्मक अभ्यास कहनेमें आता है। अन्यथा क्या होता है? कि विचार करता है और उसे ठीक लगे। समझका दूसरा कोई विपर्यास न हो; यदि समझका विपर्यास हो तो उसे बराबर नहीं लगता है, अभी वह बात बैठती नहीं, ऐसा लगता है उसे। लेकिन उतना विपर्यास नहीं हो तो ठीक है, ऐसा लगता है। लेकिन ये ठीक है, उसका कोई मूल्यांकन अथवा महत्ता देने जैसी नहीं है कि चलिये, बैठता तो है। पहले नहीं बैठता था। ऐसे नहीं। वह तो, ठीक है वह अठीक होनेमें देर नहीं लगेगी। यदि वह बराबर लगा है तो उस बराबरको अंतर मिलान करनेमें, उसके अनुभव अभ्यासमें ऊतारा नहीं जायगा और परिणमनके प्रयोग तक नहीं पहुँचा नहीं जायगा तो वह ठीक लगा है, वह कभी भी अठीक हो जायेगा। वापस बदल जायेगा। क्योंकि उसका मूल गहरा नहीं है। ऐसे विकल्पके एकत्वमें रहकर, विकल्पमें जुड़े रहकर, रागके पक्षमें खड़ा रहकर आत्माकी बात सच्ची है और अच्छी है, ऐसा कहता है, तबतक उसने पक्षांतर नहीं किया है। बात आपकी सच्ची है, लेकिन अभी पक्षमें खड़ा है, रागके एकत्वमें खड़ा है, इसलिये उसे जो ऊपर-ऊपरसे बराबर लगा है, वह बदलनेमें देर नहीं लगेगी, क्योंकि अभी उसने पक्ष नहीं बदला है। ऐसा है।

इसलिये उसे वह बराबर लगा है, वह बराबर लगनेमें संतुष्ट होनेके बजाय, वहाँ उसे एक नया असंतोष उत्पन्न हो, असंतोष उत्पन्न हो कि यह बराबर लगा है तो जैसा है वैसा अनुभव क्यों नहीं हो रहा है? अब क्या बाकी रहता है? अब तुझे अन्दरमें क्या अवरोध है? उसकी यदि खोज करे तो उसे ख्याल आयेगा कि बराबर लगा है, लेकिन राग होते ही एकत्व हो जाता है। ये तो अभी विचारमें आया है, लेकिन राग होते ही एकत्व हो जाता है, राग होते ही एकत्व हो जाता है। ये बराबर लगा है

वह, इसमें बराबर कहाँ रहा? परिणमनमें तो बराबर नहीं रहा।

लोग नहीं कहते हैं? कि आप हमारी बात सच कहते हो, लेकिन जब प्रसंग आता है उस वक्त तो आप वहाँ जाकर खड़े हो जाते हो, तो आपने हमारी बातको सच्ची कहाँ मानी है? ऐसा बनता है कि नहीं? वैसे परिणमन है वह प्रसंग है और प्रसंग आने पर तो वहाँ रागके पक्षमें खड़ा रहता है और बात आती है तो कहता है कि नहीं, बराबर है, राग भिन्न है और ज्ञान भिन्न है, ज्ञान भिन्न है और राग भिन्न है। बात बराबर है, हमको बैठती है। भाई! तुझे बैठी नहीं है, भाई! अभी बैठनेमें देर है। उतनी बातमें ठगाना मत। अन्दरमें प्रयोगके परिणमनमें ऊतरना होगा। उसे प्रत्यक्ष अनुभवसे भिन्न करना पड़ेगा। और तब वह बात सच्ची है, तबतक वह बात वास्तवमें सच्ची है, ऐसा नहीं है। ऐसा है।

मुमुक्षु :- ज्ञेय छे इसलिये...

पूज्य भाईश्री :- लेकिन ज्ञेय है ऐसा नक्की कहाँ हुआ? ज्ञेय है ऐसा कहो कि फलाना ज्ञेय है, नक्की कहाँ हुआ? ज्ञानमें नक्की हुआ। ज्ञान है, ज्ञान है ऐसा स्वतंत्र देखे तब वह ज्ञेयसे भिन्न ज्ञात होता है। अकेले ज्ञानको देखे, शुद्धज्ञानको देखे, शक्तिरूप ज्ञानको देखे तो ज्ञान भिन्न ज्ञात होता है। ज्ञान भिन्न है और राग भिन्न है, एक इतने वचन सुनकर सोगानीजीने स्वानुभूति प्रकट की है। चौबीस घण्टेमें!

गुरुदेवके मुमुक्षु समाजमें यह एक अद्वितीय इतिहास है कि जिन्होंने गुरुदेवको सुनकर चौबीस घण्टेमें स्वानुभव किया हो। उन्होंने एक असधाराण बल प्रगट किया था। परमार्थकी बात पहली बार श्रवण हुयी। प्रत्यक्ष ज्ञानीसे। और चौबीस घण्टमें (प्राप्ति की)। दिगंबर थे और दिगंबरके बहुत ग्रन्थ पढ़ लिये थे। समयसारादि दिगंबरके शास्त्र पढ़नेकी जब उन्हें धुन लगी तब दुकान पर भी वे शास्त्र लेकर बैठते थे। अजमेरमें उनकी दुकान थी। शास्त्र लेकर दुकान पर बैठे हो। पढ़ते ही रहते थे। बाहर मूँढा जैसा रखे और बाहर बैठे। ग्राहक आये वह अन्दर जाये और आदमी ग्राहकको सँभाले। पहले-से ही धुनी स्वभाव तो था। जिस कामके पीछे उनकी धुन हो, फिर उसहीमें चले, धुनमें ही चले। ग्राहक आये उसे आदमी सँभालता था। ऐसेमें दुकान कमज़ोर पड़ गयी, उसके बाद कोलकाटा गये हैं। लेकिन उसमें कुछ समझमें नहीं आया। दिगंबरका साहित्य पढ़ लिया, कुछ समझमें नहीं आया। प्रत्यक्ष ज्ञानीकी एक आवाज सुनी-टोन आया-प्रत्यक्ष चैतन्यकी गुँज वाणीमें उठी कि ज्ञान और राग जुदा है, चौबीस घण्टेमें अनुभव प्राप्त किया। इतिहासमें यह एक अनूठा दृष्टान्त है। ऐसा टोन था।

कल बहिनश्री वाणीकी बात बहुत करते थे। कैसी वाणी थी, कैसी वाणी थी।

(पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन...)

जानता, वही निश्चय आत्मा के अनुभव को मोक्षमार्ग जानता है।' कहो, समझ में आया? '**निज-आत्मा में ही रहना, वह ज्ञानी का घर है।**'' नीचे (लिखा) है। आत्मा का घर, निज-आत्मा में रहना, वह आत्मा का घर है। राग में रहना, वह आत्मा का घर नहीं है, बाहर का घर तो कहाँ आया? आहाहा..! '**आत्मा की शिला वही ज्ञानी का आसन है।**' बाहरकी शिला नहीं; उसका आसन अन्दर में है। समझ में आया? '**जिन आत्मिक तत्त्व ही ज्ञानी का वस्त्र है...**' अपना ज्ञान वही अपना वस्त्र है। कारण कि ढँककर ऐसा का ऐसा पड़ा है। '**निज आत्मिकरस ही ज्ञानी का खान-पान है।**' आहार-पानी नहीं। यह प्रत्यक्ष वहाँ कहा अवश्य न? आहाहा..! '**निज आत्मिक शैय्या ही ज्ञानी की शैय्या है।**' आत्मिक शैय्या ही ज्ञानी की शैय्या है। यह बाहर का सोने का था कब? आत्मा सोता कब है? आहाहा..! समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा को जो प्रत्यक्ष जानकर अनुभव नहीं करता, वह संसार से मुक्त नहीं होता। गुलाँट खाकर बात करे तो आत्मा को प्रत्यक्ष जानकर जो वेदन करता है, वह मुक्त होता है; इसके अतिरिक्त दूसरी कोई मुक्ति की क्रिया है नहीं।

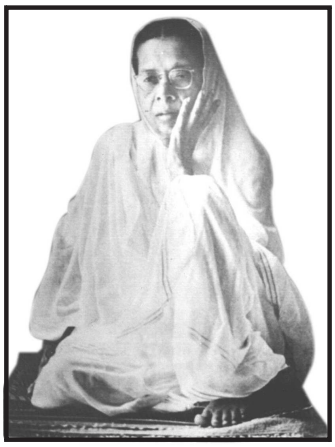

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी.१ A

प्रश्न :- उसमें महत्ता आ जाती है और विचार करते हैं तो विचारसे वह भाव टूटते नहीं। जो महत्ता आ जाती है, कुटुम्ब-परिवार के सभ्यों के प्रति ममता है ... जो महत्ता आ जाती है वह महत्ता विचारसे टूटती नहीं, तो क्या करना चाहिये?

समाधान :- उदयभाव है लेकिन अन्दर यदि आत्मा की लगनी लगे तो विचार करे। विचारसे नहीं टूटती। यदि आत्मा की ओर लगन लगे तो वह टूटे। वास्तविक तो कब टूटती है? कि ज्ञायक को पहिचाने तब टूटे। उससे भिन्न पड़े कि मैं तो ज्ञायक हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है। वास्तविक रूपसे तो तब टूटती है। लेकिन उससे पहले भी उदयभाव भले रहा लेकिन स्वयं विचार करे, पुरुषार्थ करे। मात्र विचार करे ऐसा नहीं, उसके साथ स्वयं को उसका रस टूट जाये तो वह मन्द पड़ जाती है। जो संसार सम्बन्धित विचार हैं उसका रस टूट जाय तो वह विचार मन्द पड़ जाते हैं, उसका रस टूट जाता है कि यह सब सारभूत नहीं है, सारभूत तो मेरा आत्मा है। यह सब तो निःसार है। ऐसा यदि उसको अन्दर निश्चय हो और उस प्रकार का रस टूट जाय कि महिमावंत तो मेरा आत्मा ही है। यह सब कुछ सारभूत नहीं है। इस प्रकार का यदि अन्दर निश्चय हो और उस प्रकार की अन्दरसे यदि निरसता लगे तो वह टूटती है। विचार मात्र.. अकेले विचार किया करे और निरसता नहीं लगे तो ऐसे नहीं टूटती। अन्दरसे वास्तव में यह मेरा स्वरूप नहीं, यह सारभूत नहीं है। मेरा आत्मा शाश्वत है। यह कुछ महिमावंत नहीं है। यह सब तो मात्र कल्पनासे माना है। इसप्रकार का अन्दरसे वैराग्य आना चाहिये, उस प्रकार की लगन लगनी चाहिये, विचार के साथ-साथ, तो टूटे।

उदयभाव में स्वयं जुड़ जाता है लेकिन अन्दरसे उसका रस टूट जाना चाहिये, तो छूटे। रस टूटे तो अशुभमें-से शुभ में आये। लेकिन वह शुभ भी मेरा स्वरूप नहीं है, उससे भी मैं भिन्न हूँ। यथार्थ वस्तु को जाने कि सत्य तो यही है, बाकी सब असत्य है। तो असत्य में खड़ा रहना, वह यदि उसे अन्तरसे लगनी लगे तो टूटे। बिना लगन टूटे नहीं। आत्मा की महिमा आये बिना वह टूटे नहीं।

बाह्य के सब राग ऐसे होते हैं कि चैतन्य की ओर प्रेम जागृत हो तो बाहर का प्रेम अन्दरसे टूट जाय। एक मेरा आत्मा ही सर्वस्व है, वही जाननेयोग्य, वही देखनेयोग्य, वही विचार करनेयोग्य है, उसही का भजन करने योग्य है, यह सब व्यर्थ है। बाहर में भगवान जिनेन्द्र, जिसने वस्तु-स्वरूप बताया, वे ही हृदय में रखनेयोग्य हैं, गुरु हृदय में रखनेयोग्य हैं, शास्त्र का चिन्तवन करनेयोग्य है। इन सबपर दृष्टि रखनेयोग्य नहीं है, उसे लक्ष्य में लेने योग्य नहीं है, उसपर राग करनेयोग्य नहीं है। ऐसा यदि अन्दरसे सत्य निर्णय आये और सच्चे विचार और सच्चे विचार आये और सच्ची लगन लगे और सच्चा वैराग्य आये तो टूटे। बाकी जीवने वैराग्य लाकर अनेक बार तोडा है, लेकिन यथार्थ कब टूटे? आत्मा को लक्ष्य में ले, ज्ञायक को पहिचाने तो वास्तविक रूपसे टूटे। नहीं तो विचारसे, वैराग्यसे टूटता है, उसका रस टूट जाता है। उदयभाव खुद को कहता नहीं कि तुम इसमें जबरदस्ती जुड़ जाओ, खुद जुड़ता है। उसे बाहर में कोई कहता नहीं है तू मुझे देख, तू मुझे सुन, तू मेरे विचार कर, ऐसा कोई कहता नहीं, स्वयं ही अपने रागसे जुड़ता है। उसका राग, निरसता लगे तो टूट जाय।

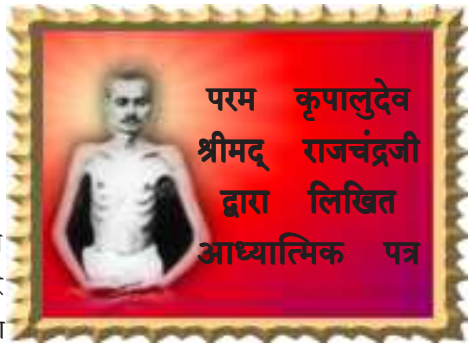

१७१

बंबई, कार्तिक सुदी १४, बुध, १९४७

सुज्ञ भाईश्री अंबालाल इत्यादि, खंभात।

श्री मुनिका पत्र इसके साथ संलग्न है तो उन्हें पहुँचाइयेगा।

निरन्तर एक ही श्रेणी रहती है। हरिकृपा पूर्ण है।

त्रिभोवन द्वारा वर्णित एक पत्रकी दशा स्मरणमें है। वारंवार इसका उत्तर मुनिके पत्र में बताया है वही आता है। पत्र लिखनेका उद्देश मेरे प्रति भाव करानेके लिये है, ऐसा जिस दिन मालूम हो उस दिनसे मार्गका क्रम भूल गये ऐसा समझ लीजिये। यह एक भविष्यकालमें स्मरण करने योग्य कथन है।

सत् श्रद्धा पाकर जो कोई आपको धर्म-निमित्तसे चाहे उसका संग रखें।

वि. रायचन्दके यथायोग्य।

१७२

मोहमयी, कार्तिक सुदी १४, बुध, १९४६

सद्जिज्ञासु-मार्गानुसारी मति, खंभात।

कल आपका परम भक्तिसूचक पत्र मिला। विशेष आह्लाद हुआ।

अनंतकालसे स्वयंको स्वविषयक ही भ्रांति रह गयी है; यह एक अवाच्य और अद्भुत विचारका विषय है। जहाँ मतिकी गति नहीं, वहाँ वचनकी गति कहाँसे हो?

निरंतर उदासीनताके क्रमका सेवन करना; सत्पुरुषकी भक्तिमें लीन होना; सत्पुरुषोंके चरित्रोंका स्मरण करना; सत्पुरुषोंके लक्षणका चिंतन करना; सत्पुरुषोंकी मुखाकृतिका हृदयसे अवलोकन करना; उनके मन, वचन और कायाकी प्रत्येक चेष्टाके अद्भुत रहस्योंका वारंवार निदिध्यासन करना; और उनका मान्य किया हुआ सभी मान्य करना।

यह ज्ञानियों द्वारा हृदयमें स्थापित, निर्वाणके लिये मान्य रखने योग्य, श्रद्धा करने योग्य, वारंवार चिंतन करने योग्य, प्रतिक्षण और प्रति समय उसमें लीन होने योग्य परम रहस्य है। और यही सर्व शास्त्रोंका, सर्व संतोके हृदयका और ईश्वरके घरका मर्म पानेका महामार्ग है। और इन सबका कारण किसी विद्यमान सत्पुरुषकी प्राप्ति और उसके प्रति अविचल श्रद्धा है।

अधिक क्या लिखना? आज, चाहे तो कल, चाहे तो लाख वर्षमें और चाहे तो उसके बादमें या उससे पहले, यही सूझनेपर, यही प्राप्त होनेपर छूटकारा है। सर्व प्रदेशोंमें मुझे तो यही मान्य है। प्रसंगोपात्त पत्र लिखनेका ध्यान रखूँगा। आप अपने प्रसंगियोंमें ज्ञानवार्ता करते रहियेगा, और उन्हें परिणाममें लाभ हो इस तरह मिलते रहियेगा।

अंबालालसे यह पत्र अधिक समझा जा सकेगा। आप उनकी विद्यमानतामें पत्रका अवलोकन कीजियेगा और उनके तथा त्रिभोवन आदिके उपयोगके लिये चाहिये तो पत्रकी प्रतिलिपि करनेके लिये दीजियेगा।

यही विज्ञापन।

सर्वकाल यही करनेके लिये जीनेके इच्छुक रायचन्दकी वंदना।

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अक्टूबर-२०१८) का शुल्क डॉ. महेशभाई महेता एवं डॉ. गीताबहेन महेता परिवार, मुंबई के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।